दलित जाग्रति और ज्योतिबा का सत्यशोधक समाज

डॉ0 नीता,

एसोसिएट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
नारी शिक्षा निकेतन,
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
लखनऊ।

''उठो अतिशूद्र भाइयों जागो
पारम्परिक गुलामी तोड़ने को तैयार हो जाओ।''[1]

भारतीय संस्कृति को विश्व में महान गौरव प्राप्त है और भारतीय समाज ''वसुधैव कुटुम्बकम'' और ''सर्वे भवन्तु सुखिन'', ''सर्वे सन्तु निरामयः'' जैसे मानवीय तथा आदर्शवादी मूल्यों पर आधारित है, किन्तु सामाजिक, आर्थिक धार्मिक और सांस्कृतिक स्तर पर मंथन किया जाये तो भारतीय समाज अनेक वर्गों में विभाजित रहा है। इसी समाज का एक विशाल हिस्सा (दलित समाज) सदियों से अमानवीय यातनाओं, वर्णगत–जातिगत उच्चता एवं निम्नता, अत्याचारों तथा जातीय अहंकार से ग्रसित रहा है।[2] धर्मशास्त्रों एवं सामाजिक, धार्मिक मान्यताओं के आधार पर उक्त अमानवीय मूल्यों को धर्मसम्मत बताया जाता रहा हैं। दलित समाज सदैव से ही आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़ा रहा है और आज भी भारत में किसी न किसी रूप में यह घृणित व्यवस्था विद्यमान है, जबकि संविधान में सभी नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व के अधिकार प्रदान किये गये हैं, परन्तु वास्तविकता इससे परे है। दलितोत्थान एवं उनमें चेतना जाग्रत करने का कार्य समय–समय पर मनीषियों द्वारा किया जाता रहा है। परन्तु इस दिशा में आज भी महात्मा ज्योतिबा राव फुले के सत्यशोधक समाज की आवश्यकता बनी हुई है। धर्म ग्रन्थों में शूद्रों व अस्पृश्यों के लिए जो व्यवस्था की गयी थी, आज इक्कीसवीं सदी में भी उनका प्रभाव भारतीय समाज पर बना हुआ है।[3]

'दलित' का शाब्दिक अर्थ 'दबाया' या 'कुचला हुआ' है।[4] दलित कहा जाने वाला यह वर्ग जिसे अनार्य, शूद्रः अस्पृश्य, अछूत, हरिजन आदि नामों से पुकारा जाता रहा हैं जिसे सदियों से अपमानित, शोषित व प्रताड़ित किया गया।[5] वास्तव में 'दलित' से अभिप्राय उस व्यक्ति, जाति या समुदाय से हैं जो धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक अर्थात् सभी क्षेत्रों में उपेक्षित और दबा हुआ है।[6]

'दलित' वर्ग ऐसी जाातियाँ हैं जिनके स्पर्श से हिन्दू अपने को अपवित्र मानते है। हिन्दू समाज ने परम्परागत स्थान के कारण मंदिरों में प्रवेश की अनुमति नहीं दी, जिन्हें अलग कुओं से पानी लेना पड़ता हैं और पाठशाला के भवन में बैठकर नहीं अपितु उसके बाहर खड़े होकर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती हैं। दलित शब्द आज प्रायः शूद्र, अतिशूद्र, चाण्डाल, मेहतर, आदिवासी आदि अछूत जातियों के लिए प्रयोग किया जाता है।[7]

'दलित' शब्द का चलन बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में हुआ। पिछड़ा वर्ग आयोग की रिपोर्ट के अनुसार पहली बार इसका प्रयोग 1919 ई0 में हुआ। मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार अधिनियम द्वारा 1919 में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और बहिष्कृत जातियों के लिए 'दलित' शब्द मान्य हो गया।[8] अम्बेडकर ने 1932

ई0 के पूना पैक्ट के बाद अछूतों के लिए 'डिप्रेस्ड क्लास' शब्द का प्रयोग किया जबकि गांधी जी ने अछूतों को 'हरिजन' नाम दिया जिसका विरोध हुआ तथा भारत सरकार के गृह मंत्रालय के 10 फरवरी, 1982 के पत्र में भारत सरकार कल्याण मंत्रालय ओ0एम0नं0 12025/14/90–एस0सी0डी0, 16 अगस्त, 1990 के आदेश द्वारा 'हरिजन' शब्द के प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया और इसके स्थान पर अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति का प्रयोग होने लगा तथा इसे 'दलित' शब्द के रूप में भी प्रयोग किया जाने लगा।[9]

डा0 अम्बेडकर ने भी उन जातियों को ही 'डिप्रेस्ड क्लास' माना हैं जो अपवित्रकारी हैं।[10] वास्तव में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोग ही दलितों की श्रेणी में आते हैं। वर्तमान समय में भारत सरकार के लिए दलित का सीधा अर्थ अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोगों से हैं।

आदिकाल में दलित समाज की स्थिति दयनीय थी और अठारहवीं शताब्दी तक उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ परन्तु भारत के सामाजिक–वैचारिक इतिहास में 19वीं शताब्दी नव–जागरण का युग कहा जाता है।[11] इस शताब्दी को आधुनिक भारतीय इतिहास में पुनर्जागरण एवं सामाजिक सुधार का काल माना जाता है। इसका प्रारम्भ महान समाज सुधारक राजा राममोहन राय ने किया। उन्होंने 'ब्रह्म समाज' के माध्यम से धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों की दिशा में प्रथम प्रयास किया। राजा राममोहन राय सहित 'ब्रह्म समाज' के अन्य समाज–सुधारकों का ध्यान उच्चजातीय समाज में प्रचलित दोषों को दूर करने तक ही सीमित रहा।[12] दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित 'आर्य समाज' का उद्देश्य वैदिक समाज की रचना करना था परन्तु यह आन्दोलन प्रगतिशील नहीं था। इन्होंने सभी जाति के लोगों को वेदों के पढ़ने का अधिकार देने की बात की थीं परन्तु दलितों में शिक्षा का घोर अभाव था और उच्च जातियों की प्रताड़ना के कारण वे इसका लाभ उठाने से वंचित रह गये थे।[13] रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद ने मानव सेवा को ईश्वर सेवा बताया और दीन–दुखियों की सेवा पर बल दिया और छुआछूत का विरोध किया। दलित समाज की स्थिति को सुधारने में सहयोग प्रदान नहीं कर पाये जिसके कारण दलित समाज के लोगों की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रहीं।

दक्षिण भारत में स्थापित थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापक कर्नल अल्कॉट ने दलितों को शिक्षित करने के उद्देश्य से 1894 ई0 में एक विद्यालय खोला और एनी बेसेन्ट ने उच्च जाति के लोगों का ध्यान दलित वर्ग के प्रति आकर्षित किया परन्तु कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया तथा दलित वर्ग को इसका लाभ नहीं मिल सका बल्कि पहले की तरह ही दलित वर्ग सामाजिक एवं आर्थिक अवसरों से वंचित रहा। इसका प्रमुख कारण यह था कि उनके द्वारा किया गया प्रयास वास्तविक न होकर दलित वर्ग को ईसाइयत की तरफ मोड़ने का प्रयास था। महाराष्ट्र में एम0जी0 रानाडे के प्रार्थना समाज ने 1898 ई0 में 'दलित वर्ग मिशन' की स्थापना कर जाति प्रथा के खिलाफ आंदोलन चलाया परन्तु असफल रहा।[14] ब्रिटिश कंपनी शासन के अन्तर्गत ईसाई मिशनरियों ने दलितों के लिए विद्यालयों एवं चिकित्सालयों की स्थापना की।[15]

सामाजिक वर्ण व्यवस्था के प्रभाव के कारण पिछड़े एवं निम्न जाति के लोगों में शिक्षा ग्रहण करने का साहस नहीं था क्योंकि शिक्षा पर ब्राह्मणों का एकाधिकार था। 1813 ई0 के बाद ईस्ट इण्डिया कंपनी ने यूरोपियन पद्धति पर बिना भेदभाव के एक वर्नाक्यूलर विद्यालय स्थापित किया।[16] ब्रिटिश सरकार ने सन् 1858 ई0 में घोषणा की कि सरकारी अनुदान से संचालित होने वाले विद्यालय बिना किसी भेदभाव के सभी

जातियों के प्रवेश हेतु खुले रहेंगे।[17] हंटर आयोग (1882) ने दलितों में शिक्षा के प्रसार की सिफारिश की परन्तु कोई ठोस कार्य नहीं किया।[18] 1923 ई0 में सरकार ने एक प्रस्ताव पारित किया कि सरकार द्वारा अनुदानित शिक्षण संस्था दलित जातियों के लड़कों का प्रवेश लेने से मना करती हैं तो उसे सहायता नहीं दी जायेगी। ब्रिटिश सरकार ने 1925 ई0 में एक बिल पारित किया कि सभी सार्वजनिक सड़कें, कुआं, तालाब, कार्यालय इत्यादि बिना किसी भेदभाव के सभी लोगों के लिए खुले रहेंगे।[19]

समाज में विद्यमान विसंगतियों को दूर करने के लिए ही उपरोक्त प्रयास किये गये थे परन्तु दलितों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। दलित समाज में ऐसे समाज–सुधारक पैदा हुए जिन्होंने दलित समाज की स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। इसमें सबसे पहला नाम ज्योतिबा राव फुले और उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले का आता है। जिन्होंने दलित समाज में जागरूकता उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[20]

ज्योतिबा फुले का प्रादुर्भाव, पुर्नजागरण और पुरातनवाद के ऐसे संधिकाल में हुआ था जब समाज सुधार और समाज सुधारकों को लेकर समूचे भारतीय समाज में परिवर्तन के अंकुर फूट रहे थे। ज्योतिबा ने शिक्षा के जरिए दलितों में जाग्रति लाने का प्रयास किया। उन्होंने शोषित वर्गों की सामाजिक–राजनैतिक उपेक्षा के बंधनों को जो उन्हें मनुस्मृति काल से जकड़े हुए थे, तोड़ दिया। फुले ने समतावादी समाज की स्थापना के लिए दलितों में शिक्षा का प्रचार–प्रसार किया और इसके लिए पूना को अपना कार्यक्षेत्र बनाया।[21] **ज्योतिबा पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने शूद्रों में आत्मसम्मान जगाया और उन्हें बताया कि यह पूर्वजन्म का फल नहीं हैं, यह अशिक्षा और शताब्दियों से थोपी गई मानसिक दासता का फल हैं।**[22] **वह सामाजिक विषमता से लड़े, वर्ण व्यवस्था, अस्पृश्यता और ऊँच–नीच के भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठाई। इसलिए फुले युगीन भारत को धार्मिक और सामाजिक सुधारों तथा शैक्षिक और सांस्कृतिक नवोत्थान का स्वर्णिम काल कहा जाता है।**[23]

महाराष्ट्र ही नहीं सम्भवतः सम्पूर्ण भारत में उस समय ज्योतिबा फुले जैसा निष्कलंक और तपा–तपाया महापुरुष शायद ही कोई रहा हो। समाज सुधार आन्दोलनों का मुख्य आधार 'समाज' ही होना चाहिए था, न कि धर्म। इसी दृष्टि से ज्योतिबा ने कदम बढ़ाए।[24] ज्योतिबा फुले दलितों के सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक जीवन में सुधार लाकर उनमें जाग्रति उत्पन्न करना चाहते थे इसके लिए एक संगठन की आवश्यकता थी जिसके माध्यम से सुधार कार्य किया जा सके। इसी उद्देश्य हेतु 'सत्यशोधक समाज' नामक एक संगठन का निर्माण किया गया क्योंकि भारतीय पुनर्जागरण से प्रभावित ब्रह्म समाज, परमहंस समाज, आस्तिक समाज, प्रार्थना समााज जैसे सुधारवादी संगठन कार्य कर रहे थे। यह सभी संगठन अभिजात्य वर्ग द्वारा स्थापित किये गये थे। केवल सत्यशोधक समाज ही ऐसा सामाजिक संगठन था जिसके संस्थापक निम्न जाति के थे। इसकी स्थापना आश्विन माह की द्वितीय नवरात्र तद्नुसार 24 सितम्बर, 1873 ई0 को पूना में की गई। सम्पूर्ण महाराष्ट्र से लगभग 60 प्रतिष्ठित समाजसेवी इसमें एकत्रित हुए, जिन्होंने सर्वसम्मति से ज्योतिबा फुले को संस्थापक अध्यक्ष और नारायणराव गोविन्द राव कडलक को मंत्री निर्वाचित किया।[25] ज्योतिराव के तीन ब्राह्मण मित्र विनायक बापू जी भंडारकर, विनायक बापू जी डेंगले और सीताराम सखाराम दातार ने सत्य शोधक समाज के निर्माण में बहुत सहायता की।[26]

इस संगठन का उद्देश्य ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को चुनौती देना था। यह अपने आप में प्रथम संगठन था जिसका एकमात्र उद्देश्य

ब्राह्मण ग्रंथों के प्रभाव से शूद्रों एवं अतिशूद्रों को मुक्त कराना था क्योंकि ब्राह्मण पुरोहित उनका सब कुछ छीन लेते थे इसके अलावा दलितों को मानवाधिकारों की जानकारी देना तथा उनको मानसिक एवं धार्मिक दासता से मुक्त कराना था।[27] ज्योतिबा ने हिन्दू धर्म ग्रन्थों का गहराई से अध्ययन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ''ब्राह्मणवाद'' ही हिन्दू धर्म का सार हैं जो वर्ण व्यवस्था और हिन्दू समाज का आधार है। जिसने शिक्षा को नियंत्रित करके निम्न जातियों तक पहुँचने से रोका है।[28] दलितों की दयनीय स्थिति का एकमात्र कारण उनमें शिक्षा का अभाव रहा हैं, जिस पर ब्राह्मणों का एकाधिकार था।

शिक्षा के महत्व पर ज्योतिबा फुले का कहना था कि –

''विद्या बिना मति गई,

मती बिना गति गई।

गति बिना नीति गई,

नीति बिना सम्पत्ति गई।

संपत्ति बिना शूद्र ध्वस्त हुए,

इतना सारा अनर्थ एक अविद्या से हुआ।''[29]

अतएव ज्योतिबा फुले ने जनमानस को 'सत्यशोधक समाज' के झंडे तले एक ऐसा प्लेटफार्म दिया जहाँ बहुत–सी उपजातियाँ सफलतापूर्वक संगठित हो सकती थीं। उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'सत्यशोधक समाज' के निम्नलिखित **सिद्धांत** निर्धारित किए –

1. **ईश्वर एक है। सर्वव्यापी, निर्गुण, निर्विकार और सरल स्वरूप हैं। वह प्राणिमात्र में व्यापक है।**
2. **प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर भक्ति का अधिकार है। सर्वसाक्षी परमेश्वर की प्रार्थना और चिंतन के लिए किसी मध्यस्थ की, किसी दलाल की आवश्यकता नहीं है।**
3. **मनुष्य जाति के गुण उसकी श्रेष्ठता प्रमाणित करते हैं।**
4. **कोई भी ग्रंथ न तो ईश्वर प्रणीत हैं, न वह पूर्णरूपेण प्रमाण के रूप में उपलब्ध हैं।**
5. **परमेश्वर शारीरिक रंग–रूप में अवतार धारण नहीं करता।**
6. **पुनर्जन्म, कर्मकांड, जप–तप या धर्म गोष्ठियाँ अज्ञान मूलक है।**[30]

जो भी व्यक्ति समाज का सदस्य बनना चाहता था, उसे प्रभु खांडेराव की शपथ लेनी पड़ती थी। सभी जाति और धर्म के अनुयायी समाज के सदस्य बन सकते थे।

ज्योतिबा द्वारा संस्थापित सत्यशोधक समाज ब्राह्मण वर्चस्व और उच्च जातियों द्वारा समाज की निम्न जातियों के बौद्धिक शोषण तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्पीड़न और अन्याय के विरुद्ध प्रतीकात्मक रूप में एक जन–आंदोलन बनकर सामने आया[31] तथा 'सत्यशोधक समाज' ने निम्नलिखित कार्यो को अपना **लक्ष्य** बनाया–

1. **ब्राह्मणी शास्त्रों की मानसिक तथा धार्मिक गुलामी से लोगों को मुक्त करना।**
2. **ब्राह्मण पुरोहितों द्वारा किये जाने वाले शोषण को रोकना।**
3. **शिक्षा का प्रचार–प्रसार करना।**
4. **महिलाओं को शिक्षा देना।**
5. **अछूतों का उद्धार कर छुआछूत को मिटाना।**
6. **महिलाओं के मानव–अधिकारों की रक्षा करना।**

7. दीन–शिशुओं तथा अपाहिजों के प्रति सहानुभूति रखना।

8. सत्याचरण एवं सत्यनिष्ठा को अपनाना।

9. मूर्तिपूजा तथा तीर्थपूजा का निषेध।

10. मानव जाति को समानता, बंधुता तथा स्वतंत्रता दिलाना।[32]

समाज की साप्ताहिक बैठकें अधिकतर रविवार को होती थीं जिससे लोग बैठकों में भाग ले सकें। समाज की बैठकों में नारी–शिक्षा, दलित महिला–शिक्षा, स्वदेशी के प्रचार तथा पुरोहितों द्वारा समाज को गुमराह किए जाने पर चर्चा होती थी। समाज की घोषणा थी कि वह जाति–पांत, अस्पृश्यता, धर्म की संकीर्णता और मनुष्य द्वारा मनुष्य के हर प्रकार के शोषण के विरुद्ध हैं। पूना की मलिन बस्तियों, कामगारों और गरीब लोगों में समाज 'सर्वधर्म समभाव' और 'मानवता' का पक्षधर था।[33]

सत्यशोधक समाज ने दलितों से कहा कि वे लोग पुरोहितों को अपने किसी कार्यक्रम में न बुलाएँ और ना ही उनके द्वारा कोई संस्कार कार्य संपन्न करवाएँ। समाज विवाहों में अपव्यय, जाति–पांत, ऊँच–नीच, मूर्ति और देवी–देवताओं की पूजा–अर्चना का घोर विरोधी था। समाज ने दलित वर्ग को समझाने का प्रयास किया कि पूजा, अर्चना मात्र एक मिथ्या हैं, इससे दलित समाज का लाभ कभी भी नहीं होगा। इसके फलस्वरूप शूद्र और निम्न जातियों ने पुरोहितों को अपने मंगल उत्सवों में बुलाना तथा उनसे मुहूर्त और विवाह की तिथियाँ निकलवाना बंद कर दिया।

सत्यशोधक समाज ने दलित वर्ग को काफी हद तक प्रभावित किया परन्तु ब्राह्मणों ने प्रत्येक स्तर पर इसका विरोध किया। कट्टरपंथी पुरोहितों ने नए–नए षड़यंत्र रचे तथा शूद्रों को भड़काना प्रारम्भ कर दिया कि यह माली और उसका समाज सबको या तो ईसाई बना देगा या फिर उनका धर्मभ्रष्ट कर देगा। ब्राह्मणों ने यह कुतर्क किया कि मराठी भाषा की प्रार्थना ईश्वर के पास पहुँच ही नहीं सकती, ज्योतिबा उन्हें मूर्ख बना रहा है। कुछ लोगों ने ज्योतिबा से कहा कि मराठी भजन और प्रार्थनाएँ ईश्वर के पास पहुँचेगी ही नहीं क्योंकि अभी तक तो पुरोहित लोग देवताओं की भाषा संस्कृत में ही श्लोक और मंत्रपाठ करते थे, इसीलिए प्रार्थनाएँ ईश्वर के पास सीधे पहुँच जाती थीं। ईश्वर ने वेद–शास्त्र भी संस्कृत भाषा में ही रचे हैं।

ज्योतिबा को बड़ा आघात पहुँचा। उन्होंने लोगों से कहा, ''मनुष्यता सबसे श्रेष्ठ हैं। सभी धर्म समान हैं। सबका ईश्वर एक है। वह जाति–पांत नहीं मानता है। ईश्वर सभी भाषाओं में प्रार्थना सुन सकता है। जात–पात, वर्णभेद और ऊँच–नीच की दीवारें सब ब्राह्मणों की देन हैं जो उन्होंने अपने लाभ के लिए खड़ी की हैं। ईश्वर गरीब से गरीब की हर भाषा और बोली समझ लेता हैं। उन्होंने कहा कि पारिवारिक उत्सव, व्रत, जन्म, मुंडन, विवाह जैसे सभी समारोहों से पुरोहितों और ब्राह्मणों का जब तक पूर्ण बहिष्कार नहीं किया जाता, वे शूद्र ही समझे जायेंगे। उनकी आने वाली संतानें भी जात–पात, छुआछूत और सदियों की दासता से छुटकारा नहीं पा सकेगी।[34] इस संदेश का इतना प्रभाव पड़ा कि दलित अपने मांगलिक उत्सवों, शादी–समारोहों में पुरोहितों को नहीं बुलवाकर अपने में से ही किसी बुर्जुवा के सान्निध्य में संस्कार सम्पन्न कर लेते।[35]

अभी तक दलित समाज के लोग ब्राह्मणों को देवताओं की तरह पूजते थे और उन्हें अपना संरक्षक और धर्मगुरू मानते थे लेकिन ज्योतिबा ने पाखंडी पुरोहित और ब्राह्मणों के पूर्ण बहिष्कार के लिए अपने सत्यशोधक समाज के माध्यम से जाग्रति उत्पन्न कर दी। महाराष्ट्र में इससे पहले इतने क्रांतिकारी और प्रगतिशील समाज सुधारों

का कार्य कोई व्यक्ति या संस्था नहीं कर पाई थी। अतः सत्यशोधक समाज की गतिविधियों के परिणामस्वरूप दलितों में एक नई जाग्रति उत्पन्न हुई तथा दक्षिण–पश्चिम भारत का प्रभाव भारत के शेष भागों में भी दिखाई पड़ने लगा और ब्राह्मणों व गैर ब्राह्मणों के बीच एक टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई।

सत्यशोधक समाज एवं ज्योतिबा के विचारों से प्रभावित बालाजी केशाजी पाटिल ने अपने पुत्र के विवाह में ब्राह्मण पुरोहित का बहिष्कार कर दिया। इसी कारण से ओतुर गाँव के पुरोहित वामन जगन्नाथ एवं शंकर बापू जी ने पाटिल के विरुद्ध मानहानि का दावा कर दिया। पूना के जिला जज ने कहा कि ''पुरोहित अपना पौरोहित्य शुल्क पाने के अधिकारी हैं, भले ही उन्हें किसी मांगलिक उत्सव में बुलाया गया हो या नहीं।'' इस निर्णय ने पुरोहितवाद को दृढ़ आर्थिक आधार और सामाजिक मान्यता प्रदान कर दी। ज्योतिबा और सत्यशोधक समाज के लिए यह एक चुनौती थी। यह मामला बंबई उच्च न्यायालय ले जाया गया। ब्राह्मण वर्चस्व से प्रभावित इस न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश सर एम0आर0 वेस्टरौप ने भी इस निर्णय को बहाल रखा। परन्तु ज्योतिबा के अथक प्रयत्नों के कारण पूना के प्रथम श्रेणी के सब–जज ने निचली अदालत के इस फैसले को खारिज कर दिया। यह नवम्बर 1887 की घटना हैं।[36] बाद में मुंबई हाईकोर्ट ने एक मामले में निर्णय देते हुए कहा कि दूसरी जातियों के लोग ब्राह्मण पुरोहित के बिना विवाह कर सकते हैं तथा विवाह का पौरोहित न करने पर दक्षिणा की मांग नहीं की जा सकती।[37]

सत्यशोधक समाज की यह नयी विवाह रीति अत्यधिक सरल थी। इसलिए वह लोकप्रिय होने लगी।[38] सम्पूर्ण महाराष्ट्र के गैर–ब्राह्मणों में नई पद्धति से विवाह की परंपरा का विकास हुआ। सत्यशोधक समाज के कार्यकर्ता सरल विधि से विवाह और अन्य मांगलिक उत्सव बिना किसी व्यय के सम्पन्न कराने लगे जिससे ब्राह्मणों का बहिष्कार के साथ ही न्यायिक हस्तक्षेप भी समाप्त हो गया।[39] गुना जी बापू जी पाटिल शिंदे ने बालाजी केशाजी पाटिल के पुत्र की तरह स्वयं अपने विवाह में ब्राह्मणों का बहिष्कार किया। पुरोहितों ने बाधाएँ उत्पन्न की परन्तु सत्यशोधक समाज ने इसका विरोध किया और विवाह संपन्न कराया। अतः पुरोहित रहित, दहेज रहित, सीधे–सादे विवाह से लोगों में एक नई जाग्रति का उदय हुआ।[40] स्वयं ज्योतिबा फुले और सावित्री बाई द्वारा गोद लिया पुत्र यशवंत का विवाह हड़पसर निवासी माली जाति के ग्यानवाकृष्णा ससाणे की पुत्री राधा के साथ सत्यशोधक समाज की पद्धति से 04 फरवरी, 1889 को संपन्न कराया गया।[41]

ज्योतिबा का सत्यशोधक समाज व्यावहारिक धरातल पर कार्य करता था। सत्यशोधक समाज एक क्रांतिकारी जन आंदोलन, दलित जनों की आकांक्षाओं का प्रतीक और जाग्रति का संदेशवाहक बन चुका था। ज्योतिबा का सत्यशोधक समाज सुधारवादी कार्यक्रमों के कारण सम्पूर्ण महाराष्ट्र में बहुत लोकप्रिय हो गया था। यह शूद्र अतिशूद्र, निम्न वर्ग, किसान–कामगार और दस्तकारों में जाग्रति की लहर फैलाने वाला, क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाला आंदोलन बन गया था। इस प्रकार नवजागरण काल में ज्योतिबा फुले और सत्यशोधक समाज ने बड़ी सक्रियता, व्यावहारिकता एवं दूरदृष्टि का परिचय देते हुए दलित वर्गों में समग्र सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन, जाग्रति और वैचारिक क्रांति का बीजारोपण किया। ज्योतिबा ने कहा कि पेशवाओं के समय में निर्णय तलवार के बल पर होते थे परन्तु अब बुद्धि और तर्क के बल पर आगे बढ़ना होगा और इसके लिए दलित समाज को शिक्षित करना और संगठित रहना अत्यंत आवश्यक है।[42] सत्यशोधक समाज ने शिक्षा के विकास के लिए

जनमानस से चंदा जुटाकर दलित होनहार छात्रों को छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था की। अध्ययन के लिए छात्रावासों, निःशुल्क पुस्तकों तथा प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए रात्रि पाठशालाओं का प्रबंध किया।[43]

सत्यशोधक समाज के प्रचारक और उपदेशक सिर पर साफा बाँधते थे तथा कंबल रखते थे। हाथ में ढोल रहता था। गरीब और शूद्र जाति की बस्तियों में ढोल–बजाकर लोगों को एकत्र करते थे तथा शिक्षा और सामाजिक अधिकारों को पाने के लिए जागरूक करते थे जिससे वे अपनी मानसिक दासता को त्यागकर स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास कर सकें। इससे दलित वर्ग अपने अधिकारों को पाने के लिए जागरूक हो उठे।[44]

सत्यशोधक समाज ने जातीय एकता पर बल दिया और दलित जातियों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। वे किसी जाति विशेष के पक्षपाती नहीं थे तभी तो उन्होंने अपनी माली जाति की चार हजार से भी अधिक लोगों की पंचायत में जाने से मनाकर दिया था। वह मानवधर्म के पुजारी थे। उन्होंने मानव सेवा को सब धर्मों से श्रेष्ठ धर्म माना था।[45]

समाज के दो उपयोगी वर्ग नाई और धोबी जिन्हें पूना में ब्राह्मण पुरोहित हेय दृष्टि से देखते थे, फूले ने उन्हें समाज का उत्कृष्ट सेवाभावी माना और संगठित रहने पर जोर दिया। सत्यशोधक समाज ने निम्न जातियों के आर्थिक शोषण का भी विरोध किया। उसने उच्च जातियों द्वारा कम पारिश्रमिक दिए जाने के विरुद्ध आवाज उठाई। इसके प्रभाव में आकर 1875 ई0 में पूना के नाइयों ने ब्राह्मणों की हजामत बनाने से इंकार कर दिया जिसके फलस्वरूप ब्राह्मणों को झुकना पड़ा और बढ़ी हुई दरों पर हजामत करना तय हुआ।[46]

सत्यशोधक समाज ने देवदासी–प्रथा और मंदिरालयों का भी घोर विरोध किया तथा सामाजिक गुलामी के विरुद्ध आवाज उठाई और सामाजिक न्याय की मांग की। समाज ने दलित स्त्रियों की स्थिति को भी उठाने का प्रयास किया और बाल विवाह का विरोध किया तथा विवाह के लिए लड़की सहमति को अनिवार्य माना गया। यह सभी कार्य 'सत्यशोधक समाज' के माध्यम से किया जा रहा था।[47]

ज्योतिबा हिन्दू समाज की संकीर्णता, जड़ता और कट्टरता के खिलाफ थे, किन्तु धर्मान्तरण के घोर विरोधी थे। एक अधिवेशन में उन्होंने कहा कि **"भारत की दलित जातियाँ आज अपना गौरवमय अतीत व उच्च संस्कृति के भाव को भूल रही हैं तथा अभिजात्य वर्ग द्वारा किए जाने वाले दोयम दर्जे के व्यवहार व प्रताड़नाओं से तंग आकार ही धर्म परिवर्तन की ओर अग्रसर हैं किन्तु उन्हें समझना चाहिए कि भारत की गौरवशाली संस्कृति उन्हीं के कंधों पर टिकी है। सदियों से हम सुख–दुःख में साथ–साथ रहते आए हैं। हमें एक–दूसरे के दुःखों को दूर करने हेतु हाथ बटाँना होगा।"** ज्योतिबा निडर, स्पष्टवादी तथा उदार मानवतावादी थे। वह मानव धर्म के पुजारी थे।[48]

ज्योतिबा हिन्दू धर्म को अंधविश्वास, ऊँच–नीच, जात–पात और भेदभाव को बनाए रखने वाला धर्म मानते थे, जो मानवता के लिए सही नहीं था।[49] उनके अनुसार मानव अगर सत्य के अनुसार चलेगा तभी सुखी होगा, सुखी होने का दूसरा कोई रास्ता नहीं हैं।[50] धर्मग्रंथ वह किसी भी धर्म का क्यों न हो, वह ईश्वर निर्मित नहीं हैं। ये सब मनुष्यों द्वारा ही लिखे गये हैं।[51] वह समता, एकता और बंधुत्व के आधार पर समाज का निर्माण करना चाहते थे। उन्होंने धर्म के नाम पर स्त्रियों और शूद्रों पर होने वाले अत्याचारों का विरोध किया। उनकी दृष्टि में दलित समाज के विकास में हिन्दू धर्म सबसे बड़ी बांधा थी। वह मानवता के धर्म को सर्वोपरि मानते

थे। उनका लक्ष्य पद–दलित मानवता का उत्थान करना था।[52]

महात्मा फुले दलित जाग्रति की दिशा में ज्योतिपुरुष थे, उन्होंने निम्न जातियों को अपने सामाजिक अधिकारों के प्रति जूझना सिखाया और दलितों में आत्मसम्मान का भाव जाग्रत किया। ज्योतिबा कहते थे–**"एक गुलाम को शिक्षा दे दो, वह क्रांतिकारी बन जायेगा। वह सड़ी–गली सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करेगा और अपना रास्ता खुद चुन लेगा।"** इस मशाल को जाग्रत करने के लिए ही उन्होंने 'सत्यशोधक समाज' की कल्पना की जिसे अपने अथक प्रयासों से साकार किया। महात्मा फुले द्वारा शुरू किए गये सामाजिक मुक्ति संग्राम के मानक आज भी प्रासंगिक है।[53]

28 नवम्बर, 1890 को ज्योतिबा फुले की मृत्यु हो जाने के कारण सन् 1891 से 1897 तक सत्यशोधक समाज का सफल नेतृत्व सावित्री बाई फुले ने किया परन्तु 1897 ई0 में महाराष्ट्र में हैजे की बीमारी फैल गई जिसके कारण 10 मार्च, 1897 ई0 को सावित्री बाई फुले का भी निधन हो गया तब सत्यशोधक समाज की बागडोर उनके पुत्र डा0 यशवन्त के हाथों में आ गई।[54]

अतः 'सत्यशोधक समाज' की गतिविधियों से दलित समाज में सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में एक नई जाग्रति उत्पन्न हुई और दलित अपने अधिकारों को पाने के लिए जागरूक हो उठे। उन्होंने उन लोगों को सामाजिक चेतना और सत्य का मार्ग दिखाया जिनकी प्रगति के मार्ग तथाकथित उच्च वर्ग द्वारा बन्द कर दिए गये थे और जिनकी आत्मचेतना तक बुझा दी गई थी। सदियों की दासता, शोषण, अज्ञान और अन्याय का मकड़जाल काटने के लिए वे ज्योति बनकर आये। वह चाहते थे कि **भारत एक राष्ट्र बने जिसमें सभी को समान अधिकार हो, सभी में स्नेह–प्रेम व्यवहार हो, तभी देश विकास के पथ पर आगे बढ़ सकेगा।**[55] सत्यशोधक समाज दलित जनों की आकांक्षा का प्रतीक और जाग्रति का सन्देशवाहक था। 'समाज' के उद्देश्य आज भी उतने ही प्रासंगिक है। ज्योतिबा फुले और उनके सत्यशोधक समाज का भारतवर्ष सदैव ऋणी रहेगा।

जीवन जिसका ज्योति पुंज हैं,
मन गंगाजल धारा हैं।
ऐसे प्यारे महापुरुष को,
शत–शत नमन हमारा है।
कर्मभूमि जिसका समाज हैं
सत पथ अविरल धारा हैं।
भेदभाव और छुआछूत को,
जिसने दूर बिसारा है।।
नारी दशा सुधार कार्य हित,
अपना जीवन वारा हैं।
समता मूलक दिव्य ज्योति का,
नभ में एक सितारा है।।
ज्ञानदीप के उजियारे से,
जन का कष्ट निवारा है।
ऐसे प्यारे महापुरुष को,
शत–शत नमन हमारा है।।
जिसने जीवन अर्पित करके,
'मानव धर्म' सँवारा हैं।
दयाभाव से जीवन जीकर,
आदि धर्म विस्तारा है।।
स्वाभिमान का पाठ पढ़ाकर
सेवाधर्म उकेरा हैं।
'धर्म' नाम पर खुली लूट और
आडम्बर ना गवारा है।।

सदियों से जकड़ी बेड़ी के,

पासों से छुटकारा हैं।

ऐसे प्यारे महापुरुष को

शत–शत नमन हमारा है।[56]

महात्मा फुले और सत्यशोधक समाज द्वारा जलाई गई मशाल पुणे से प्रारम्भ चेतना एवं जाग्रति, आज भारत के दलित व शोषित वर्ग में आत्मगौरव व विकास की प्रेरणा का अहसास कराती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जिया लाल आर्य, जोतीपुंज महात्मा फुले प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ–305
2. उत्तर प्रदेश पत्रिका, सितम्बर–अक्टूबर, 2002
3. माता प्रसाद, 'हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1993, पृश्ठ–15
4. डा0 हरदेव बाहरी, हिन्दी शब्द कोष, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 'पंद्रहवाँ संस्करण, 2000, पृष्ठ–386
5. उत्तर प्रदेश पत्रिका, सितम्बर–अक्टूबर, 2002
6. माता प्रसाद, उत्तर प्रदेश में दलित जातियों का दस्तावेज, किताब घर, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 1995, पृष्ठ–12
7. जगजीवन राम, भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या, राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण 2001, पृष्ठ–98–99
8. कंवल भारती, दलित जन उभार भाग–3, बी0एम0एन0 प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ–253
9. जगजीवन राम, भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या, राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण 2001, पृष्ठ–99
10. माता प्रसाद, उत्तर प्रदेश में दलित जातियों का दस्तावेज, किताब घर, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 1995, पृष्ठ–13
11. कन्हैयालाल चंचरीक, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2000, पृष्ठ–62
12. धनंजय कीर, महात्मा ज्योतिराव फुले, फादर ऑफ अॅवर सोशल रिब्यूलेशन, पॉपुलर प्रकाशन, बंबई, द्वितीय संस्करण 1964, पृष्ठ–52
13. शंभूनाथ, सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, भाग–1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004, पृष्ठ–336–345
14. स्वामी विवेकानंद, नेशनल ट्रस्ट बुक इण्डिया, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2004, पृष्ठ–325–330
15. शैलेन्द्र पाँथरी, अमरेंद्र प्रतापसिंह, आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, निशा ट्रेडिंग कॉरपोरेशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2000, पृष्ठ–281
16. काशी नाथ के0 केवलकर, नान ब्राह्मीन मूवमेन्ट इन सदर्न इंडिया, 1873–1949, शिवाजी यूनिवर्सिटी

पब्लिकेशन, शिवाजी यूनिवर्सिटी प्रेस, फर्स्ट एडिशन, 1979, कोल्हापुर, पृष्ठ–23

17. जी0एस0 धूरिये, कास्ट एंड रेस इन इंडिया, पापुलर पब्लिकेशन, फर्स्ट एडीशन, 1969, पृष्ठ–183
18. धनंजय कीर, डा0 अम्बेडकर लाइफ एंड मिशन, पॉपुलर पब्लिकेशन, पृष्ठ–5
19. रिपोर्ट ऑफ दी कमेटी ऑन अनटचबिलिटी इकोनामिक एंड एजुकेशनल डेवलपमेंट ऑफ दी शिड्यूल्ड कॉस्ट्स एंड कनेक्टेड डाकूमेंट्स 1969, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, डिपार्टमेंट ऑफ सोशल वेल्फेयर, नई दिल्ली, चैप्टर–2, पृष्ठ–3
20. धनंजय कीर, महात्मा ज्योतिराव फुले, फॉदर ऑफ अवर सोशल रिब्यूलेशन, पॉपुलर प्रकाशन बंबई, प्रथम संस्करण, 1654, पृष्ठ–126
21. कन्हैया लाल चंचरीक, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, द्वितीय संस्करण 2000, पृष्ठ–61–62
22. मुरलीधर जगताप, सामाजिक क्रांति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फुले, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2007
23. कन्हैया लाल चंचरीक, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, द्वितीय संस्करण 2000, पृष्ठ–63, 68
24. रामबाबू ज्योति, सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फुले, साहित्यागार, जयपुर, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ–49
25. कन्हैया लाल चंचरीक, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, द्वितीय संस्करण 2000, पृष्ठ–79
26. नवशक्ति, 24 सितम्बर, 1872
27. धनंजय कीर, महात्मा ज्योतिराव फुले, फॉदर ऑफ अवर सोशल रिब्यूलेशन, पॉपुलर प्रकाशन बंबई, प्रथम संस्करण, 1654, पृष्ठ–127
28. जी0पी0 देशपांडे, सेलेक्टेड राइटिंग ऑफ जेतीराव फुले, लेफ्ट वर्ल्ड बुक, नई दिल्ली, फर्स्ट एडीशन, जनवरी 2002, पृष्ठ–5
29. महात्मा ज्योतिराव फुले, किसानका कोड़ा उद्धत–एल0जी0 मेश्राम विमल कीर्ति संपादक, महात्मा ज्योतिबा रावफुले, रचनावली, खण्ड–एक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संशोधित संस्करण 1996, पृष्ठ–289
30. एल0जी0 मेश्राम विमल कीर्ति, महात्मा ज्योतिबा राव फुले, रचनावली, खण्ड–1, राधा कृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1996, पृष्ठ–241–247
31. कन्हैया लाल चंचरीक, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण 2000, पृष्ठ–80

32. मुरलीधर जगताप, युगपुरुष महात्मा फुले, महात्मा फुले चरित्र साघने प्रकाशन समिति, शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र शासन, मुबंई, प्रथम संस्करण–11 मई 1993, पृष्ठ–84

33. वीरेश्वर द्विवेदी, समता के संदेशवाहक महात्मा फुले, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, तृतीय संस्करण, पृष्ठ–27

34. कन्हैया लाल चंचरीक, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण 2000, पृष्ठ–81

35. रामबाबू ज्योति, सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फुले, साहित्यागार, जयपुर, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ–73

36. कन्हैया लाल चंचरीक, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण 2000, पृष्ठ–82

37. डा0 कुसुम यदुलाल, दलित शिक्षा का परिदृष्य, कल्पज पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ–75

38. रामबाबू ज्योति, सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फुले, साहित्यागार, जयपुर, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ–73

39. डॉ0 कुसुम, यदुपाल, दलित शिक्षा का परिदृश्य कल्पज पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ–76

40. कन्हैया लाल चंचरीक, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण 2000, पृष्ठ–83

41. डा0 मु0ब0 शहा, भारतीय समाज क्रांति के जनक महात्मा ज्योतिबा फुले, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998, पृष्ठ–39

42. कन्हैया लाल चंचरीक, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण 2000, पृष्ठ–84

43. डा0 कुसुम यदुलाल, दलित शिक्षा का परिदृष्य, कल्पज पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ–75

44. कन्हैया लाल चंचरीक, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण 2000, पृष्ठ–84

45. रामबाबू ज्योति, सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फुले, साहित्यागार, जयपुर, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ–75

46. कन्हैया लाल चंचरीक, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण 2000, पृष्ठ–85

47. डा0 मु0ब0 शहा, भारतीय समाज क्रांति के जनक महात्मा ज्योतिबा फुले, पृष्ठ–58–61

48. रामबाबू ज्योति, सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फुले,

साहित्यागार, जयपुर, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ—48

49. डा0 मु0ब0 शहा, भारतीय समाज क्रांति के जनक महात्मा ज्योतिबा फुले, पृष्ठ—41, 44

50. डॉ0 एल0जी0 मेश्राम 'विमलकीर्ति', महात्मा ज्योतिबा राव फुले रचनावली, खण्ड—01, पृष्ठ—35

51. डॉ0 एल0जी0 मेश्राम 'विमलकीर्ति', महात्मा ज्योतिबा राव फुले रचनावली, खण्ड—02, पृष्ठ—353

52. डा0 मु0ब0 शहा, भारतीय समाज क्रांति के जनक महात्मा ज्योतिबा फुले, पृष्ठ—49

53. रामबाबू ज्योति, सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फुले, साहित्यागार, जयपुर, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ—40

54. पूर्वोक्त, पृष्ठ 106

55. देवेंद्र कुमार बेसेंतरी, भारत के सामाजिक क्रांतिकारी, दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृष्ठ—124

56. रामबाबू ज्योति, सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फुले, साहित्यागार, जयपुर, प्रथम संस्करण 2007, पृष्ठ—110—111